Volume: 1 Issue: 6 Pages: 19-21

International Journal of Research in Academic World

E-ISSN: 2583-1615
Impact Factor: 3.133

Received: 19/January/2022 Int. J Res. Acad. World. 2022; 1(6):19-21 Accepted: 21/February/2022

पूर्व मध्यकाल में उतरी भारत में कृषकों का अवलोकन

[*1]डॉ0 अनिल कुमार यादव

[*1]असि0 प्रोफेसर प्राचीन इतिहास संस्कृति पुरातत्व विभाग पी0जी0 कालेज, पट्टी, प्रतापगढ, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पूर्व मध्यकाल में उत्तरी भारत में कृषकों का अवलोकन करना है जिसके अंतर्गत कृषक और कृषिकर्मकारों की स्थिति में परिवर्तन का विश्लेषण किया गया तथा पूर्व मध्यकाल के कृषकों का वर्गीकरण किया गया है, जहां भूमिपति, ग्रामपति, अनन्तसीर, स्वतन्त्र क्षेत्रवान का वर्णन किया गया है और उनके कार्य जैसे–कृषि, पशुपालन, व्यापार की स्थिति को समझा गया है।

मूल शब्द: कुटुम्बी, शाकटायन, शतहलिः, राजतरंगिणी, मध्यकाल

प्रस्तावना

पूर्व मध्यकाल के स्रोतों से प्राप्त साक्ष्यों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि इस काल में कृषि–प्रधान अर्थव्यवस्था का विस्तार हुआ और कृषकों के कई वर्ग दृष्टिकोण होने लगे। अमरकोश [1] जिसकी रचना विन्टरनित्स के अनुसार छठी शताब्दी ईसवी में हुई, में कृषकों एवं कृषिकर्मकरों के लिये केवल पाँच शब्द मिलते हैं–क्षेत्राजीव, कर्षक, कृषिक, कृषीवल और कीनाश। दसवीं शताब्दी में हलायुध ने अपनी अभिधानरत्नमाला में अमरकोश की तालिका में कुटुम्बी शब्द और जोड़ दिया। कुटुम्बी शब्द का भी पूर्व मध्यकाल में अर्थ–विस्तार दृष्टिगोचर होता है। प्रो0 शिवेश चन्द्र भट्टाचार्य [2] के अनुसार, प्राचीन काल में कुटुम्बी समृद्ध गृहस्थ होते थे, जो केवल कृषि ही नहीं अपितु व्यापार एवं कुसीद से भी सम्बन्धित होते थे। पूर्व मध्यकाल में कुटुम्बी मुख्य रूप से कृषि से ही सम्बन्धित हो गये और उनमें से बहुत से अधिया–बटाई पर कार्य करने लगे। बारहवीं शताब्दी में हेमचन्द्र ने अपने अभिधानचिन्तामणि {3} एवं अनेकार्थ–संग्रह [4] में कृषकों एवं कृषिकर्मकरों के लिये मिलने वाले शब्दों की तालिका में अन्य अभिधान भी जोड़ दिये। ये थे हली, कार्षिक एवं कृषक। कथासरित्सागर [5] (11वीं शताब्दी) एवं राजतरंगिणी [6] (12वीं शताब्दी) से ज्ञात होता है कि कश्मीर में कार्षक [7] शब्द छोटे कृषकों के लिये प्रयुक्त होने लगा था ये कृषक या तो स्वयं अपनी खेती करते थे या भृतकों द्वारा करवाते थे। संस्कृत के कोश–ग्रन्थों में कृषकों के सन्दर्भ में मिलने वाले शब्दों की संख्या में विस्तार से कृषकों के समूह के विस्तार एवं उनके वर्गीकरण का संकेत मिलता है।

धारा नगर–निवासी धनपाल के प्राकृत शब्दकोश पाइअ–लच्छी–नाममाला [8] (972 ईसवीं) [9] में कई प्राकृत शब्द भी कृषकों एवं कृषिकर्मकरों के लिये मिलते हैं। इनमें पामर [10] शब्द भी मिलता है। अपने देश्य शब्दों के कोश देशीनाममाला में हेमचन्द्र (12वीं शताब्दी) ने पामर शब्द को कुटुम्बी (कर्षक) का समानार्थक माना है। [11] अमरकोश (2.10.15) में पामर शब्द निम्न स्तर के दीन व्यक्ति के लिये मिलता हैः कर्षक या कृषिकर्मकर के अर्थ में यह शब्द इस कोश में नहीं मिलता। निम्न स्तर के कृषक के अर्थ में यह शब्द पहले–पहल वाक्पतिराज के गौडवहो [12] (736 ई०) में मिलता है। वाक्पतिराज कन्नौज नरेश यशोवर्मन् के आश्रय में थे। पामर शब्द इसी अर्थ में धनपाल की पाइअ–लच्छी–नाममाला (972 ई०) एवं हेमचन्द्र (12वीं शताब्दी ईसवी) की देशीनाममाला में भी मिलता है। पामर शब्द के इस अर्थ–विस्तार में निम्न स्तर के आश्रित कृषकों के समूह के विस्तार का संकेत मिलता है।

पूर्व मध्यकाल में कृषकों का निम्न आधारों पर वर्गीकरण मिलता है

नवीं शताब्दी में मेधातिथि [13] ने खेती में किये जाने वाले श्रम के आधार पर कृषिजीवियों को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया थाः

***Corresponding Author:** डॉ0 अनिल कुमार यादव

1. स्वयंकृतया कृष्या जीवति–वे कृषिजीवी जो अपने व अपने परिवार के लोगों के श्रम से स्वयं कृषि करते थे।
2. अस्वयंकृतयाऽपि (कृष्या जीवति)–वे जो स्वयं व अपने परिवार के लोगों की सहायता से कृषि नहीं करत थे, अथात् जो कर्मकरों आदि स कृषि करात थे।

सामान्यतः जिनके पास अधिक भूमि रहती रही होगी वे स्वयं कृषि न करके दूसरों से कराते थे। कम भूमि वाले लोग अपनी कृषि स्वयं तथा अपने परिवार के लोगों की सहायता से करते रहे होंगे। [14]

शाकटायन व्याकरण [15] की अमोघ–वृत्ति (नवीं शताब्दी) नामक स्वापज्ञ टीका में हल की संख्या में आधार पर कृषकों के वर्गीकरण का संकेत मिलता है [16] –

1. वह कृषक जिसके पास अपना बड़ा अथवा सामान्य हल न हो (अहलिः, अहलः [17])
2. वह जिसके पास अपना पुराना, घिसा हुआ बड़ा अथवा सामान्य हल हो (दुर्हलिः, दुर्हलः)
3. वह जिसके पास निज का बड़ा अथवा उत्तम हल हो (सुहलिः, सुहलः)
4. वह जिसके पास बहुत से उत्तम हल हों (बहुहलिः पुरुषः)।

हलों की संख्या मोटे तौर पर कृषिजीवियों की सामाजार्थिक स्थिति एवं प्रतिष्ठा से सम्बन्धित थी। दण्डी (550–650ई0) के दशकुमारचरित [18] की एक कथा में मिथिला एवं पुण्ड्रदेश के क्षेत्र के एक गृहपति जनपद महत्तर का उल्लेख मिलता है, जिसे 'शतहलिः' बताया गया है। यह शब्द इस बात का सूचक है कि वह जनपद का एक बड़ा भूमिपति था, जिसके पास सौ हल थे जिनसे वह कृषि कराता रहा होगा। इसी ग्रन्थ [19] में एक दुष्ट ग्रामणी (ग्रामपति) के अनन्तसीर नाम से यह संकेत मिलता है कि वह बहुत से हलों का स्वामी था। ऐसे ग्रामणी लोगों की तुलना मुगल काल के उन ग्राम–प्रमुखों या ग्राम पंचों से की जा सकती है, जिन्हें मुकद्दम [20] कहते थे। ये मुकद्दम नकद या अनाज में वेतन देकर कर्मकरों द्वारा अपना कृषि–कार्य कराते थे। सबसे निम्न स्तर के वे कृषक होते थे जिनके पास हल नहीं होता था। वे भी हल–बैल एक दूसरे से मांग कर अपना कृषि कार्य कर लेते थे। इस हलसाझा की प्रथा के अवशेष आधुनिक काल में भी पाये जाते हैं।

कृषकों के वर्गीकरण का एक अन्य आधार धान्योत्पत्ति एवं धान्य–संग्रह का परिमाण भी था। पूर्व मध्यकाल के ग्रन्थ ब्रह्मपुराण [21] में इस दृष्टि से 3 वर्गो की अवधारणा मिलती हैः–

1. **गर्तधन्यधनाः** वे जो अपने खेतों में उत्पन्न अनाज को जमीन में गर्त (तहखाना) बनाकर रखते थे। इनकी धान्योत्पत्ति काफी अधिक रही होगी।
2. **कुसूलधनिनः** वे जो अपने खेतों में उत्पन्न अनाजों को खत्तियों में रखते थे।
3. इनके पास पहले वर्ग की अपेक्षा कम धान्य रहता रहा होगा।
4. **घटक्षिप्तधनाः** वे जो अपना धान्य घड़ों में रखते थे। ये सामान्यतः दरिद्र कृषक एवं कर्मकर रहे होंगे।

प्राचीन काल में ब्राह्मणों के लिये मनु आदि ने हिंसाप्राय होने के कारण कृषि–कार्य गर्हित माना था। [22] पराशरस्मृति (600–900 ई0 के बीच) में ब्राह्मणों को अपने षट्कर्म के साथ–साथ कृषि करने का विधान किया गया है। मध्वाचार्य [23] ने इस पर भाष्य करते हुये कहा है कि ब्राह्मण को अपने शूद्र शुश्रूषकों से कृषि कराना चाहिये। पूर्व मध्यकाल में ब्राह्मण भूमिपतियों के समुदाय के हित–संवर्द्धन के लिये इस प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। [24] पराशर ने कृषि, को क्षत्रियों के लिये भी उनके सामान्यतः विहित कर्म के रूप में माना है। [25] इस वर्ण के भूमिपति व मध्यम वर्ग के कृषक कर्मकरों आदि से कृषि कराते रहे होंगे। वैश्यों के लिये कृषिकर्म, पशुपालन एवं वाणिज्य प्राचीन काल से ही विहित कर्म थे। पराशर ने भी इसका अनमोदन किया है। [26] पूर्व मध्यकाल में वैश्यों की स्थिति में गिरावट के कुछ प्रमाण मिलते हैं। [27] ऐसा प्रतीत होता है कि इस वर्ग के सामान्य कृषक काफी हद तक आश्रित कृषक हो गये होंगे।

शूद्रों के लिये उनके सामान्य कर्तव्य के रूप में कृषि–कर्म का स्पष्ट विधान सर्वप्रथम पराशरस्मृति में ही मिलता है। आर०एस०शर्मा [28] के अनुसार शूद्रों का कृषक बनना पूर्व मध्यकाल के सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति थी। पर द्विज–शुश्रूषा या द्विज–सेवा के साथ किये गये कषि–कर्म को धर्म के दृष्टिकोण से प्रशस्त माना है। इससे यह ज्ञात होता है कि शूद्र अधिकतर स्वतंत्र कृषक न होकर कृषि–कर्मकर अथवा आर्थिक आदि आश्रित कृषक हाते था।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र पर हरदत्त (12वीं शताब्दी) की टीका [29] में कृषकों का द्विविभाजन उनके स्वतंत्र (अनाश्रित) और अस्वतंत्र (आश्रित) होने के आधार पर मिलता है। कुछ कृषक 'स्वतंत्र क्षेत्रवान' होते थे। उन्हें अपने कृषि क्षेत्र पर स्वामित्व के कुछ अधिकार रहे होंगे। दूसरे प्रकार के कृषक वे थे जो स्वतंत्र क्षेत्रवान् नहीं होते थेः वे किसी से भूमि प्राप्त कर काश्तकार के रूप में स्वयं या कभी–कभी हलवाहकों के द्वारा कृषि करते रहे होंगे। अस्वतंत्र क्षेत्रवान् हलवाहक के काम छोड़ने पर उसे दण्ड नहीं दे सकता थाः केवल राजा ही उसे दण्डित कर सकता था।

इस काल में अधिया बटाई पर कृषि–कर्म करने वाले कृषकों का एक बड़ा वर्ग बन गया था। पराशरस्मृति (11. 25) में आर्थिक कृषकों को एक मिश्रित जाति के रूप में माना गया है। आर्धिकों को उपज का आधा भाग दिया जाता था। पर आर्धिक शब्द उपलक्षण से उन कृषकों का भी बोधक हो गया जिनको कृषिफल में आधे से कम भाग दिया जाता था। आर्धिक अपने श्रम के अतिरिक्त हल, बैल एवं बीज में से सभी या उनमें से कुछ अधिया पर की जाने वाली कृषि में लगाते थे।

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल में विभिन्न आधारों पर बने कृषकों के कई वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु सामान्यतः व्यापक रूप से, उनके आश्रित एवं अनाश्रित (स्वतंत्र) दो सामाजार्थिक वर्ग थे। इस काल में निम्न स्तर के आश्रित कृषकों के समूह का विस्तार–जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है–पामर शब्द के अर्थ–विस्तार से भी सूचित होता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि पूर्व मध्य काल में कृषको का जीवन सुचारू रूप से संचालित हो रहा था और कृषि, पशुपालन, व्यापार और वाणिज्य में सहयोग कर रहे थे, जिससे इस काल की आर्थिक व्यवस्था अच्छी दिखाई पड़ती है।

संदर्भ सूची

1. अमरकोश, 2.9.6, 3.3.215.
2. सम एस्पेक्ट्स ऑफ इंडियन सोसाइटी फाम सर्का सेकेंड सेंचुरी बी0सी0 टु सर्का फोर्थ सेंचुरी ए0डी0, पृ0 129 और आगे, 248.
3. अभिधानचिन्तामणि, 3.554.
4. अनेकार्थसंग्रह, चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी, 1964, पृ0 51, 107.
5. मोनियर विलियम्स, संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी, पृ0 276.
6. राजतरंगिणी, 5.169.
7. राजतरंगिणी में यह शब्द निन्दापरक अर्थ में खेती कराने वाले कश्मीर के एक राजा के लिये प्रयुक्त किया गया है।
8. सम्पादक बी०जे०दोशी, बाम्बे, 1960.
9. वही, भूमिका, पृ0 15.
10. वही, 8.122.
11. देशीनाममाला, सम्पादक आर०पिशेल (त्ण्च्पेबीमस) द्वितीय संस्करण, विजियानगरम्, 1930, टप 41
12. संपादक एन0जी0सूरू, अहमदाबाद, 1975, श्लोक 598.
13. मनुस्मृति, 3.155 पर मेधातिथि (नवीं शताब्दी ईसवी) का भाष्य ।
14. श्रम के उपयोग के अभिसूचक के आधार पर आधुनिक काल में भारतीय कृषकों के वर्गीकरण हेतु दृष्टव्य उत्सा पटनाइक, दि जर्नल ऑफ पेजन्ट स्टडीज, जिल्द 15, नं0 3 (1988), पृ0 322.
15. शाकटायन व्याकरण, सम्पादक शम्भुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1944, पृ0 150–2.1.196 पर स्वोपज्ञ टीका।
16. पाणिनि (अष्टाध्यायी, 6.2.187) का अनुसरण करते हुये शाकटायन की अमोघवृत्ति में भी 'हलि' और 'हल' का अर्थ क्रमशरू महद्धल और सामान्य हल बताया गया है। इसी प्रकार 'जित्या' शब्द भी बड़े हल के लिये दिया गया है।
17. दशकुमारचरित, सम्पादक एम0आर0 काले, चतुर्थ संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966, पृ0 120 (मूल ग्रन्थ), 76 (नोट्स)।
18. दशकुमारचरित, पृ0 120 (मूल ग्रन्थ), 76 (नोट्स)।
19. वही, पृ0 120.
20. इरफान हबीब, दि कैम्ब्रिज ईकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द 1, पृ0 221 : वही, पेपर्स ऑन इंडियन हिस्ट्री (अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी) द्वारा इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस के 52वें सेशन (नई दिल्ली , 1992) में प्रस्तुत, पृ0 477–94.
21. ब्रह्मपुराण, सम्पादक तारणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (1976), 80.58.
22. मेधातिथि (मनुस्मृति, 10.85 पर) ने मनु के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुये कहा हैसर्वासां वैश्य वृत्तीनां गर्हिततरा कृषिः।
23. पराशरस्मृति, 2.2 पर मध्वाचार्य का भाष्य ।
24. मीनाश्री यादव, एग्रीकल्चर एण्ड पेजेन्ट्स इन नार्दर्न इंडिया फ़ाम सर्का 600 टु 1200 ए0डी0, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से डी0फिल0 उपाधि हेतु स्वीकृत शोध–प्रबन्ध (1992) पृ0 234.
25. पराशरस्मृति, 2.18, 19
26. वही, 1.70.
27. यादव, बी०एन०एस० सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दर्न इंडिया इन दि ट्वेल्फ्ट सेंचुरी, इलाहाबाद, 1973, पृ0 11 और आगे।
28. इंडियन फ्यूडलिज्म, द्वितीय संस्करण, दिल्ली, 1980, पृ0 51.
29. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, वाराणसी, 1969, 2.11.2 पर टीका।
30. मनुस्मृति (8.39) पर भारूचि (6ठीं–7वीं शताब्दी) की टीका(बी०एन०एस० यादव, प्रेसीडेंशल ड्रेस, इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, ऐंशेंट इंडिया सेक्शन, 41 सेशन (1980), पृ0 40, पाद टिप्पणियाँ 5 एवं 6.